उर्दू कहानी की प्रगतिशील परम्परा

डॉ. इशरत खान

उर्दू में कहानी का प्रारंभ भी प्रेमचन्द से होता है। उनकी पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन १९०७ में लिखी गई जो जमाना पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'अमावस की रात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि प्रेमचन्द की लोकप्रिय उर्दू कहानियां हैं।

उर्दू गद्य की विधाओं में कहानी विधा का एक गौरवमय इतिहास रहा है। उर्दू में पहले छोटी-छोटी दास्ताने कही जाती थीं। इसी में उर्दू कहानी का प्रारम्भिक रूप मिलता है। उन्नसवीं शताब्दी यदि दास्तानों की शताब्दी कही जाए तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस सदी का उत्तरार्द्ध दास्तान-लेखन के उत्कर्ष का काल था।

उर्दू में कहानी का प्रारंभ भी प्रेमचन्द से होता है। उनकी पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन १९०७ में लिखी गई जो जमाना पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'अमावस की रात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि प्रेमचन्द की लोकप्रिय उर्दू कहानियां हैं। इनके समकालीन कहानीकार थे- सज्जाद हैदर यलदरम। इन्होंने तुर्की कहानियों का उर्दू में अनुवाद भी किया और स्वयं भी उर्दू में कहानियां लिखीं।

प्रेमचन्द के अन्य समकालीन कहानीकारों में नियाज फतहपुरी, सुल्तान हैदर जोश, नजर सज्जाद हैदर और मजनूं गोरखपुरी ने प्रेम और सौन्दर्य से परिपूर्ण कहानियां लिखी हैं।

प्रेमचन्द की परम्परा में ही सुदर्शन आजम करेती, अली अब्बास हुसैनी और सुहेल अजीमाबादी आते हैं। सुदर्शन ने हिन्दू-समाज को लक्षित करके अनेक सुधारवादी कहानियाँ लिखीं। 'शाइर गुरुमंतर', 'मुसिब्बर' तथा 'बाप' उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनन्द, ज्योति घोष, के.एम. भट, एस. सिन्हा और मुहम्मद दीन तासीर ने लंदन में प्रगतिशील आन्दोलन (१९२५) का प्रारंभ किया। इसी के तहत भारतवर्ष के प्रगतिशील लेखकों ने १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। इस प्रकार हिन्दू-उर्दू में प्रगतिशील कहानियां लिखी जाने लगीं। लेकिन उर्दू में प्रगतिशील कहानियों में 'अंगारे' (१९३२) कहानी-संग्रह का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस संदर्भ में 'एहतेशाम हुसैन' लिखते हैं-

'राजनीतिक जागृति के बढ़ने और अंतर्राष्ट्रीय विचारों के फैलने के कारण कई नवयुवकों ने साहित्य में भी चेतनापूर्ण क्रांति पैदा करने के विचार प्रकट किये थे, अतएव सैयद सज्जाद जहीर, रशीद जहां, अहमद अली का एक संग्रह 'अंगारे' के नाम से १९३३ ई. में लखनऊ से प्रकाशित कराया जो बम के गोले के समान भारतीय समाज पर फटा और लोग तिलमिला उठे। सरकार ने उस पर प्रतिबंध लगा दिया परन्तु उसके प्रकाशित करने का जो उद्देश्य था, वह पूरा हो गया। उसमें असंतुलित और भावुक ढंग से धर्म, रीति-रिवाज, नैतिक आदर्शों और यौवन-संबंधी विचारों पर खुलकर चोट की गयी थी।'

सज्जाद जहीर ने अंगारे में एक छोटी-सी कहानी 'दुलारी' लिखी थी। इसके पश्चात इस क्षेत्र में सआदत हसन मंटो, कृश्न चंदर, राजिन्दर सिंह बेदी, अहमद नदीम कासमी, इस्मत चुगताई और कुर्रतुल-ऐन हैदर की कहानियों में प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा की अगली कड़ियाँ देखी जा सकती हैं।

उर्दू कथा-साहित्य को जिन लेखकों ने यथार्थवाद की चरमसीमा तक पहुंचाया है, उनमें 'सआदत हसन मंटों' का महत्वपूर्ण स्थान है। एक मामूली-सी घटना को एक जानदार कहानी में तब्दील करने का हुनर मंटों के पास ही था। यह ध्यान देने की बात है कि जिस समय मंटो ने लिखना प्रारंभ किया उस समय उर्दू का कथासाहित्य आदर्शवाद से आगे न बढ़ सका था। यह आदर्शवाद भी क्रांतिकारी किस्म का न था बल्कि मजीर अहमद और राशिदुल खैरी की परम्परा में वैयक्तिक व्यवहार के सुधार की ओर था। प्रेमचन्द्र के प्रभाव से उसमें सामाजिक चेतना के अंकुर भी फूट रहे थे, लेकिन मंटो ने इससे आगे की मंजिल-सामाजिक क्रांति दृष्टि को एकदम से फलांग कर तत्कालीन यूरोपीय साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की जो फ्रायड के मनोविज्ञान और लैंगिक मनोविकारों पर आधारित था। वासनाओं में डूबे हुए युवकों और युवतियों, वेश्याओं और समाज के गिरे हुए लोगों का चित्रण मंटों से बढ़कर अब तक उर्दू का कोई कलाकार नहीं कर सका है।

मंटो की 'टोबा टेकसिंह' विभाजन के विषय पर हिन्दी-उर्दू में लिखी गई चन्द बेहतरीन कहानियों में से एक है। अपनी धरती से एक गहरा लगाव इस कहानी की केन्द्रीय विषयवस्तु है। मंटो ने मुख्य पात्र 'बिशन सिंह' उर्फ 'टोबा' टेकसिंह में भावों की इतनी ऊर्जा भर दी है कि वह एक यादगार चरित्र बन गया है। उसका गांव ही 'टोबा टेकसिंह, उसके नाम का पर्याय हो जाता है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के मध्य वह अपने गांव को ढूंढ़ता है। अपनी समस्या का समाधान न होते हुए वह जमीन के उस टुकड़े पर गिर जाता है जिसका कोई नाम नहीं है। इस संदर्भ में कहानी की अन्तिम पंक्तियाँ संवेदना से भरपूर हैं- 'सूरज निकलने से पहले साकत व सामित बिशन सिंह के हलक से एक फलक शिगाफ चीख निकली, इधर-उधर कई अफसर दौड़ आये और देखा कि वह आदमी जो पन्द्रह बरस तक दिन-रात अपनी टांगों पर खड़ा रहा, औंधे मुंह लेटा था। उधर खारदार तारों के पीछे हिन्दुस्तान था, इधर वैसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान। दरम्यान में जमीन के इस टुकड़े पर जिसका कोई नाम नहीं था 'टोबा टेकसिंह' पड़ा था।[२]

लेखन की सतह पर बगावत करने वाली महिलाओं की खोज शुरू हुई तो मेरी निराशा, धीरे-धीरे एक खुशगवार आशा की किरन में बदलती चली गई क्योंकि लेखन के शुरुआती सफर में ही इन मुस्लिम महिलाओं ने जैसे मर्दों की वर्षों पुरानी हुक्मरानी के तौक को अपने गले से उतार फेंका था।

मंटों की 'काली सलवार', 'बू', 'ठंडा गोश्त', 'खोल दो', 'ऊपर-नीचे और दरम्यान' जैसी कहानियों पर मुकदमे भी चलाए गए। लेकिन साहित्य तो किसी मुकदमे का मोहताज नहीं होता।

इसके पश्चात कृश्न चन्दर (१९१४-१९७७) ने उर्दू कहानी को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने उर्दू कहानी को किसान-मजदूर आन्दोलन एवं अन्य सामाजिक समस्याओं से जोड़ दिया। 'कालू भंगी', 'पेशावर एक्सप्रेस', 'पूरो चांद की रात' आदि इनकी चर्चित कहानियां हैं। फिराक गोरखपुरी कृश्न चन्दर के कथा साहित्य की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहते हैं- 'एक तो उनकी सार्वभौमिक दृष्टि और जागरुक बौद्धिकता और दूसरी उनकी विशिष्ट टेकनीक। जहां तक जागरूक बौद्धिकता का प्रश्न है, कृश्न चन्दर को कथाक्षेत्र में वही स्थान प्राप्त है जो अलीसरदार, जाफरी को काव्य क्षेत्र में है। उनकी कहानियों की सर्जनात्मक दृष्टि विशाल भी है और स्पष्ट भी। वे जागरूक समाजवादी हैं, साझ ही उनका परिप्रेक्ष्य भी इतना विस्तृत है, जितना और किसी कथाकार का नहीं हुआ।'[३]

उर्दू कहानी के एक प्रमुख हस्ताक्षर राजिन्दर सिंह बेदी (१९१५-१९८४) हैं। इनकी अधिकतर कहानियां विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। बेदी की पहली कहानी 'महारानी का तोहफा' १९३६ में 'अदबी दुनिया' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके तीन साल बाद उनका पहला कहानी-संग्रह 'दाना-ओ-दाम' सामने आया जिसने उन्हें उर्दू के तरक्की-पसंदों के बीच चर्चा के केन्द्र में ला दिया। इनकी 'कल्याणी' एवं 'लाजवन्ती' कहानियां अत्यन्त चर्चित रही हैं। 'लाजवन्ती' कहानी के संबंध में जानकी प्रसाद शर्मा के विचार इस प्रकार हैं- 'विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित 'लाजवन्ती' कहानी भी स्त्री की पीड़ा को आवाज देती है। यह कहानी इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि इसमें विभाजन की विभीषिका का हृदय विदारक चित्रण है बल्कि इसलिए है कि यह समाज में स्त्री की जगह के मुद्दे को लेकर हमारे सोच को झकझोरती है। सुन्दरलाल की अपहृत पत्नी लाजवन्ती भारत और पाकिस्तान के बीच औरतों के तबादले में वापस तो आ जाती है, लेकिन वह सुन्दरलाल के लिए पुरानी लाजो नहीं रह जाती जो गाजर से लड़ पड़ती और मूली से मान जाती थी। विडम्बना यह है कि सुन्दरलाल अपहृत औरतों को दिल में बसाओ प्रोग्राम का सेक्रेटरी हैं लेकिन ऐसा वह खुद नहीं कर पाता।'[४]

अहमद नदीम कासमी एक कहानीकार के साथ-साथ मशहूर शायर भी हैं। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन से उनका नजदीकी संबंध रहा है। कासमी की कहानियों में एक स्पष्ट वैचारिक संदेश निहित रहता है। वे यथार्थ की किसी भी तरह की पर्दापेशी को स्वीकार नहीं करते बल्कि यथार्थ के हर पहलू को वैज्ञानिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में उभारने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के तौर पर 'अलहम्द-लिल्लाह' कहानी में कहानीकार, धार्मिक आस्था और वस्तुगत यथार्थ के द्वन्द्व को बहुत ही प्रभावी ढंग से बयान करता है।

उर्दू कहानी में महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन महिलाओं की कहानियों में प्रगतिशील स्वर जोर-शोर से सुनाई देता है। इस संदर्भ में मुशर्रफ आलम जौकी का कहना है- लेखन की सतह पर बगावत करने वाली महिलाओं की खोज शुरू हुई तो मेरी निराशा, धीरे-धीरे एक खुशगवार आशा की किरन में बदलती चली गई क्योंकि लेखन के शुरुआती सफर में ही इन मुस्लिम महिलाओं ने जैसे मर्दों की वर्षों पुरानी हुक्मरानी के तौक को अपने गले से उतार फेंका था। ये महज इत्तेफाक नहीं है कि मुस्लिम महिलाओं ने जब कलम संभाला तो अपनी कलम से तलवार का काम लिया। इस तलवार की जद पर पुरुषों का, अब तक का समाज था। वर्षों की गुलामी थी। भेदभाव और कुंठा से जन्मा भयानक पीड़ा देने वाला अहसास था।[५] रशीद जहां से लेकर मुमताज शीरीं, इस्मत चुगताई, वाजिदा तबस्सुम, रुकैया सखावत हुसैन, तस्लीमा नसरीन, तहमीना दुर्रानी, कुर्रतुल-एन-हैदर, फहमीदा रियाज़ और किश्वर नाहीद तक ये औरतें शताब्दियों के इतिहास में स्वयं को नंगा देखते हुए जब चीत्कार करती हैं तो कलम इतनी तीखी, पैनी और नंगी बन

जाती है कि मर्दाना समाज को डर महसूस होने लगता है।

प्रगतिशील महिला कथाकारों में इस्मत चुगताई (१९१२-१९९२) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस्मत का संबंध अर्द्धसामन्तीय परिवार से था। उनके परिवार के अर्द्धसामन्तीय परिवेश और रख-रखाव ने इस्मत के जहन में सृजन के बीज बोए। उन्होंने महसूस किया कि इस माहौल में विशेष रूप से एक स्त्री के लिए स्वाधीन और उन्मुक्त जीवन बिताना दिवास्वप्न की भांति है। यहीं से उनके भीतर एक बागियाना सोच के कथाकार ने जन्म लेना शुरू किया। उनकी पलेहाफ, 'जड़ें', 'दोजरवी' और 'बच्छो फूफी' कहानियाँ चर्चित रहीं हैं।

'लिहाफ' इस्मत की सर्वाधिक चर्चित कहानी है। इस कहानी को लेकर इस्मत पर १९४४-४५ में लाहौर की एक अदालत में मुकदमा चला। वास्तव में यह अर्द्धसामन्तीय परिवेश में अपने नवाब पति के प्रेम से वंचित एक स्त्री की दुःखभरी कहानी है। कहानीकार का उद्देश्य उस व्यवस्था का पर्दाफाश करना है जो स्त्री को पर्वर्जन की ओर ढकेलती है। उसने एक अबोध बच्ची की आंख से उस भयानक यथार्थ को दिखाना चाहा है जिसकी चर्चा हमें अशालीन और अभद्र बनाती है।

कुर्रतुल-ऐन-हैदर, उर्दू की जानी-पहचानी कथाकार हैं। वह कहानीकार की अपेक्षा उपन्यासकार के रूप में अधिक विख्यात हैं। उनका 'आग का दरिया' उपन्यास क्लासिक की श्रेणी में आता है। 'पतझड़ की आवाज', 'हस्ब-नस्ब', 'हाजी गुलबाबा बेकताशी के मलफूजात', 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजौ', 'दिलरूबा' और 'एक लड़की की जिन्दगी' आदि इनकी बहुचर्चित कहानियां हैं।

'हस्ब-नस्ब' में कुर्रतुल एक समाजशास्त्री की भूमिका में उतर आती हैं। इसकी विषयवस्तु के मूल में श्रेष्ठ कुल के मिथ्याभिमान और नवधनाढ्य वर्ग की मूल्यहीनता का अन्तर्विरोध है। छम्मी बेगम अपनी कुलीनता की रक्षा के प्रति अतिरिक्त रूप से सावधान हैं, लेकिन उसे आभास भी नहीं हो पाता कि यह कुलीनता यथार्थ के थपेड़ों से कब की चकनाचूर हो चुकी है। अज्जू मियाँ के धोखा देने के बाद भी वह

'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजौ', 'दिलरूबा' और 'एक लड़की की जिन्दगी' तीनों उपन्यास हैं लेकिन इनको दीर्घ कहानी में भी समाविष्ट किया गया है। इन तीनों दीर्घ कहानियों में आजादी के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को रेखांकित किया गया है।

जुगादरी रोहिला सरदारों के नाम लेवा इस कुनबे की कुलीनता और प्रतिष्ठा को बचाने के लिए किलाबन्द होकर बैठी रहीं, लेकिन एक-एक करके उसका सहारा छूटता जाता है। शाहजहांपुर से दिल्ली और बम्बई, शहर-दर-शहर भटकती हुई अन्ततः एक तथाकथित सम्भ्रान्त वर्ग की महिला के यहां उसे पनाह मिलती है जो अपनी सम्भ्रान्तता की ओट में देह व्यापार करती है। छम्मी बेगम इस बात पर खुश है कि इस घर में इज्जतदार लोग आते हैं। वह अपनी मालकिन के वास्तविक चरित्र से वाकिफ नहीं है। वह शुक्र अदा करती है कि खुदा ने उसे अच्छे लोगों के बीच भेजकर उसकी लाज बचा ली। यह हमारे समाज की एक बड़ी विडम्बना को लक्षित करने वाली कहानी है।

'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजौ', 'दिलरूबा' और 'एक लड़की की जिन्दगी' तीनों उपन्यास हैं, लेकिन इनको दीर्घ कहानी में भी समाविष्ट किया गया है। इन तीनों दीर्घ कहानियों में आज़ादी के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को रेखांकित किया गया है।

'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजौ' मामूली नाचने-गाने वाली दो बहनों की कहानी है। जो बार-बार मर्दों के छलावे का शिकार होती हैं फिर भी यह कहानी जागीरदार घरानों के आर्थिक ही नहीं भावात्मक खोखलेपन को भी जिस तरह उभारकर सामने लाती है, उसकी मिसाल उर्दू साहित्य में मिलना ही मुश्किल है। एक जागीरदार घराने के आगा फरहाद, पच्चीस साल के बाद भी रश्के-कमर को भूल नहीं पाते और वह उसके लिए धनदौलत का बन्दोबस्त न करके केवल कुछ गजलों का बन्दोबस्त करते हैं ताकि 'अगर तुम वापस आओ और मुशायरों में मदऊ किया जाए तो ये गजलें तुम्हारे काम आएंगी।'[६]

आखिर सब कुछ लुटने के बाद 'कमर' के पास बचता है तो बस यही कि 'कुर्तों की तुरपाई, कुर्ता दस पैसे। कहानी का शीर्षक ही हमारे समाज में औरत के हालात पर एक गहरी चोट करता है। जमींदारों का युवावर्ग, इनके साथ खूब मौज-मस्ती करता है और जरा-सा आरोप लगने पर आगा फरहाद कहते हैं- 'इस तबके की छोकरियों के पास ब्लैकमेल का यह सहल नुस्खा है। किसी आए-गए की औलाद, किसी मालदार परिचित शनासा के सिर मढ़ दी।'[७]

रश्के कमर की छोटी अपंग बहन, जमीलुन्निसा का चरित्र उसका धीरज, उसका व्यक्तियों को पहचानने का गुण और हालात का सामना करने का हौसला मन को सराबोर भी कर जाता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि मंटो की भावनात्मकता, कासमी की राजनीतिक चेतना, इस्मत का विद्रोही स्वर और कुर्रतुल-ऐन-हैदर का सांस्कृतिक बोध मिलकर, उर्दू-कहानी की प्रगतिशील परम्परा को समृद्ध करता है।

सन्दर्भ :

१. एहतेशाम हुसैन : उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २५२।
२. अतहर परवेज : उर्दू के तेरह अफसाने, पृष्ठ १६०
३. फिराक गोरखपुरी : उर्दू भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३३०
४. जानकी प्रसाद शर्मा : उर्दू साहित्य की परम्परा, पृष्ठ १५५-१५६
५. राजेन्द्र यादव : कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, पृष्ठ २१
६. कुर्रतुल-ऐन-हैदर : तीन उपन्यास, पृष्ठ ५२
७. वही, पृ. ५५

●

रीडर, हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय